



लाहौल-स्पीति के बौद्ध मठों में धार्मिक पर्यटन: सांस्कृतिक धरोहर, संरक्षण एवं सामुदायिक सहभागिता का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. गलदन सेंगे

सहायक प्राध्यापक बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध-सार: लाहौल-स्पीति के बौद्ध मठों को मात्र दर्शनीय स्थलों के रूप में नहीं, बल्कि जीवित धार्मिक संस्थाओं, ज्ञान-संप्रेषण के केंद्रों तथा स्थानीय समुदाय की सांस्कृतिक स्मृति के वाहकों के रूप में समझना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध-पत्र में ताबो एवं की जैसे प्रसिद्ध केंद्रों के साथ-साथ धनकर, पिन घाटी के मठों तथा लाहौल की मठ-परंपराओं का विवेचन किया गया है। त्रिलोकीनाथ को हिंदू-बौद्ध साझा श्रद्धास्थल के रूप में विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। अध्ययन का केंद्रीय तर्क यह है कि मठों की धार्मिक जीवंतता, सांस्कृतिक प्रामाणिकता तथा स्थानीय सामुदायिक संबंध सुरक्षित रहते हुए ही पर्यटन की दीर्घकालिक उपयोगिता सुनिश्चित की जा सकती है। केवल पर्यटक-संख्या अथवा स्थापत्य के दर्शनीय पक्ष को सफलता का मापदंड मान लेने से पूजा की मर्यादा एवं स्थानीय निवासियों की आवश्यकताएँ उपेक्षित रह सकती हैं। प्रकाशित शोध-लेखों तथा आधिकारिक स्थल-विवरणों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संरक्षण एवं सामुदायिक भागीदारी दोनों अनिवार्य शर्तें हैं। यह लेख मठों की स्वायत्तता एवं स्थानीय आजीविका के बीच एक व्यावहारिक तथा संतुलित संबंध स्थापित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है।

बीज-शब्द: लाहौल-स्पीति, बौद्ध मठ, तिब्बती बौद्ध धर्म, धार्मिक पर्यटन, सांस्कृतिक धरोहर, ताबो मठ, त्रिलोकीनाथ मंदिर, मठ-परंपरा, संरक्षण, सामुदायिक सहभागिता।

प्रस्तावना एवं शोध-पद्धति

एक ही मठ में आने वाले दो व्यक्तियों का अनुभव भिन्न हो सकता है। श्रद्धालु के लिए वह प्रार्थना एवं पुण्य का स्थान है, जबकि कला-अध्येता के लिए वह चित्रों तथा प्रतिमाओं का ऐतिहासिक साक्ष्य है। किसी स्थानीय परिवार के लिए उसी मठ का महत्त्व जीवन के धार्मिक अवसरों एवं सामुदायिक स्मृतियों से जुड़ा होता है। अतः धार्मिक पर्यटन के अध्ययन को केवल आगंतुक की दृष्टि तक सीमित रखने पर मठ का सामाजिक अर्थ अधूरा रह जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक तथा साहित्य-समीक्षात्मक है। इसमें कोई नवीन क्षेत्र-कार्य अथवा साक्षात्कार नहीं किया गया है; निष्कर्ष उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से विकसित किए गए हैं। स्पीति पर यानिक लॉरों एवं डेविड प्रिट्ज़कर की संपादकीय भूमिका, विभिन्न अनुशासनों के सहयोग तथा अधूरे ऐतिहासिक साक्ष्यों के कारण सामान्यीकरण में सावधानी बरतने की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इसी दृष्टि से लोकप्रिय पर्यटन-विवरणों को अभिलेखीय प्रमाण के समकक्ष नहीं माना गया है।

अध्ययन के प्रमुख शोध-प्रश्न हैं कि मठों की धार्मिक भूमिकाएँ पर्यटन के अनुभव को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, तथा संरक्षण संबंधी निर्णय किसकी भागीदारी से लिए जाने चाहिए। भवनों को स्वयं ऐतिहासिक स्रोत मानना भी उपयोगी है। कार्मेन एलिज़ाबेथ आउअर ने स्पीति के बौद्ध स्थापत्य के अध्ययन में स्थल पर मापन एवं विस्तृत दस्तावेजीकरण के महत्त्व को रेखांकित किया है। इसी आधार पर यहाँ दृश्य आकर्षण के साथ-साथ भवनों के वर्तमान उपयोग, ऐतिहासिक रूपांतरण एवं संरक्षणीय संवेदनशीलता पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। प्रस्तावित प्रबंधन-उपायों को लागू व्यवस्था का विवरण नहीं माना जाना चाहिए; वे आगामी क्षेत्रीय अध्ययन एवं स्थानीय विचार-विमर्श के लिए सुझाव मात्र हैं।



ऐतिहासिक संबंध एवं ताबो मठ की सांस्कृतिक भूमिका

लाहौल एवं स्पीति को एक प्रशासनिक नाम में समेट देने से उनकी ऐतिहासिक विविधता समाप्त नहीं हो जाती। प्रत्येक घाटी में मार्गों एवं बस्तियों के साथ धार्मिक संबंधों का अपना विन्यास बनता है। मठों की तुलना करते समय यह देखना आवश्यक है कि कोई संस्था किन बस्तियों की धार्मिक आवश्यकताओं से जुड़ी है तथा उसका व्यापक हिमालयी जगत से किस प्रकार संपर्क रहा है। दुर्गम भूगोल को पूर्ण सांस्कृतिक अलगाव का पर्याय मानना उचित नहीं है, क्योंकि विचारों एवं धार्मिक वस्तुओं का आवागमन कठिन मार्गों के बावजूद सदैव संभव रहा है।

ताबो का इतिहास इस प्रश्न को विशेष स्पष्टता प्रदान करता है। आउअर के स्थापत्य-अध्ययन में ताबो की स्थापना 996 ईस्वी से संबद्ध की गई है तथा मुख्य मंदिर के 1042 ईस्वी में पूर्ण हुए पुनरुद्धार/सजावटी चरण का उल्लेख मिलता है। इन दो तिथियों का अंतर महत्वपूर्ण है; इससे स्पष्ट होता है कि किसी धार्मिक परिसर का वर्तमान स्वरूप किसी एक निर्माण-अवसर का परिणाम नहीं होता, अपितु मठ समय के साथ विस्तार एवं पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया से गुजरता है। पर्यटक को केवल स्थापना-तिथि बता देना इस दीर्घकालिक प्रक्रिया का पर्याप्त परिचय नहीं है। ताबो के भित्तिचित्र, मूर्तियाँ एवं स्थापत्य उसकी प्रसिद्धि के प्रमुख आधार हैं; किंतु उनका अध्ययन केवल सौंदर्यपरक दृष्टि से नहीं, बल्कि उनके धार्मिक, अनुष्ठानिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों में किया जाना चाहिए। जिला प्रशासन के पर्यटन-विवरण में इसे “हिमालय का अजंता” कहा गया है। यह एक लोकप्रिय तुलनात्मक उपमा है; इसे ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में नहीं, बल्कि पर्यटन-व्याख्या की एक शैली के रूप में ग्रहण करना अधिक उचित है। यह उपमा कला की ओर आगंतुकों का ध्यान अवश्य आकर्षित करती है, किंतु ताबो की स्वतंत्र धार्मिक पहचान को भी समझाया जाना आवश्यक है। किसी परिचित भारतीय कला-स्थल से तुलना एक उपयोगी आरंभ हो सकती है, परंतु उससे ताबो की अपनी प्रतिमा-व्यवस्था एवं पूजा का अर्थ पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता। उसकी कलाकृतियाँ धार्मिक स्थान में प्रतिष्ठित हैं और उनका अनुभव उसी परिवेश में पूर्ण होता है। अतः ताबो में सांस्कृतिक व्याख्या का उद्देश्य आगंतुक में चित्रों को समझने की दृष्टि विकसित करना होना चाहिए। मार्गदर्शक यह स्पष्ट कर सकता है कि किसी प्रतिमा की स्थिति एवं उसके निकट चित्रित आकृतियों का संबंध पूरे कक्ष की धार्मिक संरचना से किस प्रकार जुड़ा है। जहाँ किसी पहचान अथवा कालक्रम पर मतभेद हो, वहाँ उस मतभेद को स्पष्ट रूप से रेखांकित करना अधिक शिक्षाप्रद होगा; अनिश्चितता को छिपाने से आकर्षक कथा तो बन सकती है, किंतु ऐतिहासिक समझ कमजोर होती है।

ताबो जैसे स्थल के लिए पर्यटन का मूल्य इस आधार पर भी आँका जाना चाहिए कि आगंतुक वहाँ से क्या सीखकर लौटता है। यदि वह प्राचीनता की प्रशंसा के साथ-साथ संरक्षण की आवश्यकता को भी समझता है, तो यात्रा ज्ञानवर्धक बन जाती है। मठ की धार्मिक गरिमा एवं उसके ऐतिहासिक अध्ययन को साथ रखकर प्रस्तुत करने से श्रद्धालु तथा सामान्य दर्शक, दोनों के लिए सार्थक अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए समस्त आगंतुकों से समान धार्मिक विश्वास की अपेक्षा करना आवश्यक नहीं है।

की एवं डॅखर मठ से पिन घाटी के तंग्यूड मठ तक

काज़ा के निकट स्थित की मठ को जिला प्रशासन स्पीति घाटी का सबसे बड़ा मठ माना जाता है। इसके परिचय में भित्तिचित्रों एवं थंका के साथ पांडुलिपियों तथा धार्मिक प्रशिक्षण का उल्लेख मिलता है। कॉमिक के समीप स्थित तंग्यूड मठ साक्य परंपरा से संबद्ध बताया गया है। पिन घाटी के कुंगरी को इसी स्रोत में दूसरा सबसे प्राचीन मठ तथा निंगमा परंपरा का प्रमुख केंद्र कहा गया है। ऐसे विवरण यात्रा की प्रारंभिक दिशा तो निर्धारित करते हैं, परंतु “सबसे बड़ा” अथवा “दूसरा सबसे पुराना” जैसी संज्ञाएँ अध्ययन का अंतिम निष्कर्ष नहीं मानी जा सकती; उनका आशय एवं प्रमाण पृथक् रूप से परखा जाना चाहिए।

की मठ के संदर्भ में धार्मिक प्रशिक्षण का उल्लेख विशेष महत्व रखता है, क्योंकि इससे पर्यटक की दृष्टि संग्रहित वस्तुओं से आगे बढ़कर अध्ययनरत समुदाय पर केंद्रित होती है। किसी मठ की निरंतरता उसके भवन जितनी ही शिक्षण एवं अनुशासन की प्रक्रिया पर निर्भर करती है। इसी कारण पर्यटक के लिए उपलब्ध समय तथा भिक्षुओं के दैनिक कार्यक्रम के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। प्रत्येक क्षण बातचीत अथवा छायाचित्रण की अनुमति अपेक्षित करना अध्ययन की स्वायत्तता को प्रभावित कर सकता है।



धनकर में ऊँची चट्टान पर स्थित मठ एवं उसका आसपास का दृश्य पर्यटक-अनुभव को गहराई से प्रभावित करते हैं। आउअर के अध्ययन में इसके स्थान एवं स्थापत्य का विस्तृत विवरण मिलता है, साथ ही भूकंपीय गतिविधि एवं अपरदन से परिसर में आए परिवर्तनों का भी उल्लेख किया गया है। ऐसी स्थिति में दृश्यावलोकन एवं संरक्षण को पृथक प्रश्न नहीं माना जा सकता। किसी स्थान का आकर्षक होना स्वयं में बड़े समूहों के प्रवेश की उपयुक्तता सिद्ध नहीं करता; सुरक्षित पहुँच एवं भवन की वास्तविक संरचनात्मक स्थिति के आधार पर ही निर्णय लिया जाना चाहिए।

कुंगरी तथा तंग्यूड को साथ रखने से स्पीति के भीतर धार्मिक परंपराओं की विविधता स्पष्ट होती है। पर्यटक-पुस्तिकाओं में सभी मठों को एक समान अनुष्ठान-व्यवस्था वाले संस्थान के रूप में प्रस्तुत करने से यह विविधता प्रायः दब जाती है। स्थानीय मार्गदर्शक को यह बताने का अवसर मिलना चाहिए कि किसी मठ की परंपरा एवं गुरु-शिष्य संबंध उसके धार्मिक जीवन को किस प्रकार आकार देते हैं। जिन विवरणों की प्रामाणिक पुष्टि उपलब्ध न हो, उन्हें स्पष्टतः स्थानीय मान्यता के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

इन स्थलों को जोड़ने वाला पर्यटन-कार्यक्रम स्थानों की संख्या बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा नहीं बनना चाहिए। पर्याप्त ठहराव एवं स्थानीय व्याख्या अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। किसी छोटे मठ की सीमित व्यवस्था का सम्मान करना उतना ही आवश्यक है जितना प्रसिद्ध केंद्र के नियमों का पालन करना। इस प्रकार यात्रा के मूल्यांकन में अनुभव की गुणवत्ता एवं धार्मिक संवेदनशीलता, दोनों को समुचित स्थान मिलना चाहिए।

लाहौल के मठ एवं स्थानीय धार्मिक परिदृश्य

लाहौल के प्रमुख बौद्ध केंद्रों में कर्दांग एवं शाशुर का उल्लेख अनिवार्य है। कर्दांग केलांग के निकट भागा नदी के बाएँ तट पर स्थित है। जिला प्रशासन इसके 1912 में लामा नोरबू द्वारा किए गए पुनरुद्धार तथा ग्रंथ-संग्रह का उल्लेख करता है। शाशुर के नाम का संबंध नीले चीड़ (ब्लू पाइन) से बताया जाता है; अतः इसे नीले देवदार से जोड़ना उचित नहीं है। इसके परिचय में सत्रहवीं शताब्दी एवं देवा ग्यात्सो का उल्लेख मिलता है। इन सूचनाओं से स्थानीय धार्मिक जीवन के साथ-साथ संस्थागत पुनर्निर्माण एवं व्यापक संपर्क की ओर ध्यान जाता है। कर्दांग की चर्चा केवल उसकी प्रसिद्धि के आधार पर करने से मठ की ज्ञान-संपदा उपेक्षित रह जाती है। ग्रंथों का संग्रह संरक्षण एवं अध्ययन, दोनों की जिम्मेदारी उत्पन्न करता है; उनकी सूची तैयार करना एवं भौतिक स्थिति का अभिलेखन करना अत्यंत उपयोगी होगा। पर्यटकों के लिए तैयार संक्षिप्त परिचय में ग्रंथ-संग्रह की धार्मिक भूमिका को स्पष्ट किया जा सकता है। मूल पांडुलिपियों को बार-बार प्रदर्शित करने की अपेक्षा उपयुक्त प्रतिकृतियों का प्रयोग अधिक सुरक्षित विकल्प हो सकता है, परंतु ऐसी व्यवस्था का निर्णय संबंधित मठ की सहमति से ही होना चाहिए।

तायुल एवं गुरु घंताल का विवरण भी विशेष सावधानी की माँग करता है। आधिकारिक परिचय के अनुसार तायुल सटिंगरी के ऊपर स्थित है, जहाँ पद्मसंभव की प्रतिमा तथा बौद्ध ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। गुरु घंताल तुपचिलिंग के ऊपर, चंद्रा एवं भागा नदियों के संगम के निकट स्थित है; इसकी विशेषताओं में काष्ठ-प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। पद्मसंभव से इसकी स्थापना का संबंध धार्मिक परंपरा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि इस कथन से अकेले किसी निश्चित ऐतिहासिक तिथि की पुष्टि नहीं होती।

इन स्थलों का तुलनात्मक महत्त्व उनके आकार से निर्धारित नहीं होता। किसी छोटे मठ में स्थानीय समुदाय की स्मृति का ऐसा अंश सुरक्षित हो सकता है जो अधिक प्रसिद्ध परिसर में उपलब्ध न हो। पर्यटन-योजना में केवल कुछ लोकप्रिय नामों को बार-बार प्रचारित करने से क्षेत्रीय विविधता का अधूरा चित्र प्रस्तुत हो सकता है, किंतु छोटे स्थलों का प्रचार भी उनकी सहमति एवं सुविधाओं के समुचित आकलन के पश्चात् ही किया जाना चाहिए।

लाहौल के लिए एक उपयोगी सांस्कृतिक परिचय मठ एवं आसपास की बसावट के संबंध को स्पष्ट करेगा। आगंतुक को यह समझना चाहिए कि गाँव का मार्ग एवं जलस्रोत निवासियों के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। धार्मिक स्थल तक पहुँचने का अधिकार स्थानीय जीवन में असीमित हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देता। इस साधारण समझ को यात्रा की तैयारी में सम्मिलित करने से अनेक अनावश्यक तनावों को कम किया जा सकता है।



त्रिलोकनाथ एवं साझा श्रद्धा का अर्थ

त्रिलोकनाथ लाहौल के धार्मिक पर्यटन में विशेष स्थान रखता है। जिला प्रशासन के अनुसार हिंदू श्रद्धालु यहाँ देवता को शिव के रूप में तथा बौद्ध श्रद्धालु आर्य अवलोकितेश्वर के रूप में मानते हैं। अतः इसे केवल बौद्ध मठों की सूची में सम्मिलित कर देना पर्याप्त नहीं है। यह एक साझा तीर्थ है, जिसे समझने के लिए भिन्न धार्मिक अर्थों तथा उनके स्थानीय सहअस्तित्व को साथ-साथ देखना आवश्यक है। साझा श्रद्धा का अर्थ यह नहीं है कि दोनों समुदायों की धार्मिक अवधारणाएँ पूर्णतः समान हो गई हैं। एक ही प्रतिमा अथवा स्थान के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी लोग भिन्न धार्मिक शब्दावली एवं स्मृतियों का प्रयोग कर सकते हैं। अध्ययन का प्रश्न यह होना चाहिए कि ऐसी भिन्नताओं के साथ साझा यात्रा एवं पूजा का व्यवहार किस प्रकार संभव होता है। इस दृष्टि से त्रिलोकीनाथ केवल धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक नहीं रहता, अपितु वह दैनिक संबंधों एवं धार्मिक अर्थ-निर्माण को समझने का एक ठोस अवसर बन जाता है।

इस स्थल की पर्यटन-व्याख्या में किसी एक समुदाय की मान्यता को दूसरे समुदाय की भ्रांति बताना अनुचित होगा। दोनों दृष्टियों को उनके अपने-अपने संदर्भ में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। स्थानीय श्रद्धालुओं के कथन दर्ज किए जाएँ, तो उनकी सहमति एवं कथन का संदर्भ भी सुरक्षित रखा जाना चाहिए। किसी बाहरी लेखक द्वारा तैयार की गई आकर्षक कथा को समुदाय की सर्वसम्मत स्मृति मान लेना शोध की दृष्टि से उचित नहीं है।

आधिकारिक विवरण में पुरी मेले का भी उल्लेख मिलता है। ऐसे अवसर धार्मिक यात्रा एवं सामुदायिक सहभागिता को परस्पर जोड़ते हैं। किंतु मेले को केवल दृश्य मनोरंजन की वस्तु मान लेने से उसकी धार्मिक संरचना अस्पष्ट हो जाती है। आयोजन में सम्मिलित परिवारों के दायित्व एवं अनुष्ठान की मर्यादा को समझे बिना उसकी प्रस्तुति अधूरी रह जाएगी। किसी विशेष गतिविधि को देखने अथवा उसका छायाचित्र लेने का निर्णय आयोजकों की अनुमति पर ही आधारित होना चाहिए।

त्रिलोकीनाथ का अनुभव मठ-पर्यटन से संबंधित एक व्यापक प्रश्न उठाता है: क्या पर्यटन लोगों को दूसरे विश्वास की जटिलता समझने का अवसर देता है, अथवा वह केवल एक सरलीकृत परिचय देकर आगे बढ़ जाता है? सहअस्तित्व की प्रशंसा तभी सार्थक होगी जब विभिन्न धार्मिक पहचानों की अपनी स्वतंत्र आवाज़ भी सुनाई दे। स्थल की जानकारी में साझे तत्वों के साथ भिन्नताओं को भी स्थान देने से अधिक ईमानदार सांस्कृतिक संवाद संभव हो पाता है। ऐसी व्याख्या किसी विशेष धार्मिक निष्कर्ष को आगंतुक पर आरोपित किए बिना सम्मानपूर्ण व्यवहार की भूमिका तैयार कर सकती है।

धार्मिक जीवन एवं सांस्कृतिक धरोहर की निरंतरता

मठों को जीवंत धार्मिक संस्थाओं के रूप में देखने पर उनकी धरोहर का अर्थ अधिक विस्तृत हो जाता है। कोई प्राचीन ग्रंथ अपने कागज़ एवं लेखन के कारण मूल्यवान है, परंतु उसके पाठ एवं व्याख्या की परंपरा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार अनुष्ठानिक चित्र का संरक्षण केवल उसकी भौतिक सतह की रक्षा तक सीमित नहीं रहता; उससे संबंधित धार्मिक ज्ञान के संप्रेषण का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

नामग्याल हेनरी के पिन घाटी संबंधी अध्ययन में पारिवारिक ग्रंथ-संग्रहों एवं मौखिक परंपरा का महत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनके शोध में उपलब्ध पांडुलिपियों तथा स्थानीय जानकारी को मिलाकर पेमा लिंगपा परंपरा के प्रसार की पड़ताल की गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक ज्ञान केवल मठ की औपचारिक दीवारों के भीतर ही सीमित नहीं है; परिवार एवं धार्मिक साधक भी उसके महत्वपूर्ण धारक हो सकते हैं। पर्यटक-परिचय तैयार करते समय ऐसे ज्ञान-धारकों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

थंका एवं मुखौटों जैसे धार्मिक उपादानों की सार्वजनिक प्रस्तुति में उचित संदर्भ आवश्यक है। दर्शक रंग एवं आकार से प्रभावित हो सकता है, परंतु स्थानीय धार्मिक अर्थ जाने बिना उसका अनुभव सतही रह सकता है। एक संक्षिप्त व्याख्या उपयोगी होगी जो वस्तु के उपयोग एवं उसे देखने की मर्यादा को स्पष्ट करे। जिन धार्मिक क्रियाओं में बाहरी प्रवेश की अनुमति न हो, वहाँ उस सीमा का सम्मान करना स्वयं सांस्कृतिक शिक्षा का ही एक अंग है।



कुंगरी के संरक्षण पर मेलोदी बोना का अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। उन्होंने पूजा में प्रयुक्त ऐतिहासिक कक्ष के संरक्षण को मानवीय तथा धार्मिक आवश्यकताओं से जुड़ी एक जटिल चुनौती माना है। यहाँ एक वास्तविक प्रश्न सामने आता है कि कलाकृतियों की रक्षा करते हुए धार्मिक उपयोग को किस प्रकार निरंतर बनाए रखा जाए। यदि संरक्षण का अर्थ समुदाय को अपने ही पूजास्थल से पृथक कर देना हो, तो धरोहर की निरंतरता प्रभावित हो सकती है। दूसरी ओर, केवल श्रद्धा के आधार पर हर भौतिक हस्तक्षेप को सुरक्षित नहीं माना जा सकता। विशेषज्ञ एवं धार्मिक संरक्षक के बीच नियमित संवाद अनिवार्य है।

यह संवाद स्थानीय युवाओं की भागीदारी से और अधिक समृद्ध हो सकता है। इच्छुक युवाओं को इतिहास एवं दस्तावेजीकरण का प्रशिक्षण देकर सांस्कृतिक व्याख्या में उन्हें उत्तरदायी भूमिका दी जा सकती है। महिलाओं तथा भिक्षुणियों की जानकारी को भी पूर्ण गंभीरता से सुना जाना चाहिए। उनकी भागीदारी को केवल सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रदर्शन तक सीमित रखना पर्याप्त नहीं होगा। पर्यटन तभी सीखने का सशक्त माध्यम बनता है जब स्थानीय लोग अपने अनुभव एवं अपनी सीमाएँ स्वयं व्यक्त कर सकें।

धार्मिक यात्रा एवं पर्यटन की सामाजिक अर्थव्यवस्था

धार्मिक पर्यटन का अर्थ केवल किसी प्रसिद्ध मंदिर अथवा मठ तक पहुँचना नहीं है। यात्रा की प्रेरणा एवं अनुभव, दोनों ही उसके स्वरूप को प्रभावित करते हैं। गिस्बर्ट रिन्थोडे धार्मिक प्रेरणा को इसके निर्धारण में महत्वपूर्ण मानते हैं तथा यात्रा की अवधि एवं संगठन के आधार पर धार्मिक पर्यटन के विभिन्न रूपों की चर्चा करते हैं। लाहौल-स्पीति में इस दृष्टिकोण को अपनाने से श्रद्धालु एवं पर्यटक के बीच कठोर विभाजन करने की आवश्यकता कम हो जाती है। एक ही व्यक्ति दर्शन के साथ-साथ कला में भी रुचि रख सकता है, तथा सामान्य भ्रमण के लिए आया व्यक्ति धार्मिक व्यवहार के प्रति संवेदनशील हो सकता है।

अतः आगंतुक की आस्था से उसके व्यवहार का पूर्वानुमान लगाना उचित नहीं है। पर्यावरणीय प्रभाव यात्रा के साधनों एवं ठहराव की व्यवस्था से भी उत्पन्न होते हैं। किसी धार्मिक समूह की बड़ी यात्रा स्थानीय संसाधनों पर दबाव डाल सकती है, जबकि एक छोटा सांस्कृतिक समूह संयमित ढंग से यात्रा कर सकता है। प्रबंधन में वास्तविक गतिविधियों एवं उनके प्रभाव का आकलन अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। पर्यटन से स्थानीय आय के नए अवसर विकसित हो सकते हैं—आवास एवं भोजन के साथ-साथ मार्गदर्शन तथा हस्तनिर्मित वस्तुओं की बिक्री कुछ संभावित क्षेत्र हैं। किंतु आय के वितरण का प्रश्न केवल कुल कारोबार देखकर हल नहीं होता। यह जानना आवश्यक है कि किस परिवार को नियमित कार्य प्राप्त होता है तथा कौन केवल अतिरिक्त श्रम करता है। बाहरी व्यवसाय तथा स्थानीय उद्यम के पारस्परिक संबंध भी सूक्ष्म अध्ययन की माँग करते हैं। उपलब्ध साक्ष्य के अभाव में यह घोषित करना उचित नहीं होगा कि लाभ का अधिकांश भाग किसी एक विशेष वर्ग को ही प्राप्त होता है।

आर्थर पेडर्सन की पर्यटन-प्रबंधन मार्गदर्शिका स्थानीय समुदायों एवं अन्य संबंधित पक्षों को योजना-निर्माण में आरंभ से ही सम्मिलित करने के महत्व को रेखांकित करती है। लाहौल-स्पीति में इसका व्यावहारिक स्वरूप ऐसा विचार-मंच हो सकता है जहाँ मठ के प्रतिनिधि एवं स्थानीय निवासी अपनी आवश्यकताएँ स्पष्ट रूप से रख सकें। बैठकों की संख्या से कहीं अधिक महत्वपूर्ण यह है कि निर्णयों में उनके सुझाव कितनी सीमा तक सम्मिलित किए गए हैं।

यातायात-सुविधा बढ़ने के पश्चात् भी किसी घाटी की पर्यटन-क्षमता स्वतः असीमित नहीं हो जाती। सड़क की उपलब्धता के साथ-साथ मौसम एवं स्थानीय सेवाओं की स्थिति का भी आकलन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार पर्यटक-आगमन में हुए परिवर्तन को समझने के लिए तुलनीय वर्षों के विश्वसनीय आँकड़े आवश्यक हैं। भिन्न-भिन्न स्रोतों की असंगत संख्याओं से वृद्धि का प्रतिशत निकालना भ्रम उत्पन्न कर सकता है। आर्थिक विश्लेषण की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी सूचना किस प्रकार एकत्रित की गई तथा उसमें कौन-सी गतिविधियाँ सम्मिलित की गई हैं।

संरक्षण की चुनौतियाँ एवं उत्तरदायी हस्तक्षेप

मठों की सुरक्षा में भवन की संरचना एवं कलाकृतियों की स्थिति, दोनों का आकलन आवश्यक है। जल के प्रवेश एवं दीवार की क्षति जैसी समस्याओं का समाधान स्थल-विशेष की जाँच के आधार पर ही निकाला जाना चाहिए। समस्त प्राचीन भवनों पर एक



ही आधुनिक निर्माण-पद्धति लागू करना उचित नहीं होगा। धनकर पर आउअर के अध्ययन में भविष्य के संरक्षण हेतु विस्तृत मापन तथा प्रत्येक कक्ष की क्षति का सुव्यवस्थित अभिलेखन किया गया था। इससे संरक्षण-प्रक्रिया में निरीक्षण एवं दस्तावेजीकरण का महत्त्व स्पष्ट होता है। पर्यटन के संभावित प्रभावों को भी मापने योग्य प्रश्नों में परिवर्तित किया जाना चाहिए। यदि किसी कक्ष में भीड़ से हानि होने की आशंका हो, तो आगंतुकों की संख्या एवं ठहरने की अवधि का व्यवस्थित रिकॉर्ड रखा जा सकता है। वातावरण अथवा चित्रों पर प्रभाव का दावा करने के लिए उपयुक्त तकनीकी परीक्षण आवश्यक होगा। बिना समुचित मापन के यह कहना कि पर्यटन ने किसी विशेष चित्र को नष्ट कर दिया है, उतना ही दुर्बल निष्कर्ष होगा जितना यह मान लेना कि आगंतुकों की वृद्धि का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता।

कुंगरी में बोना ने कालिख से आच्छादित चित्रों की सफाई के दौरान उत्पन्न विशिष्ट तकनीकी कठिनाइयों का वर्णन किया है। उनके अध्ययन में बिना विशेषज्ञ विधि के की गई सफाई से हुई क्षति का उदाहरण भी मिलता है। यह तथ्य सामान्य संरक्षण-बोध की सीमा को स्पष्ट करता है—किसी वस्तु को साफ़ करने की सदिच्छा एवं उसे वैज्ञानिक रूप से सुरक्षित रखने की क्षमता, ये दोनों भिन्न बातें हैं। पर्यटन से प्राप्त धन तभी उपयोगी सिद्ध होगा जब उससे समुचित विशेषज्ञता एवं सतत देखभाल की व्यवस्था स्थापित हो सके।

डिजिटल अभिलेखन इस कार्य में सहायक हो सकता है। चित्रों एवं पांडुलिपियों की उच्च गुणवत्तायुक्त प्रतियाँ अध्ययन में उपयोगी सिद्ध होंगी तथा मूल सामग्री के अनावश्यक उपयोग को भी कम कर सकती हैं। परंतु प्रतिलिपि तैयार कर लेना संरक्षण का पूर्ण विकल्प नहीं है। डिजिटल सामग्री के स्वामित्व एवं सार्वजनिक उपयोग की शर्तें पहले से निर्धारित की जानी चाहिए। कुछ धार्मिक सामग्री सीमित उपयोग हेतु ही उपयुक्त हो सकती है; उसे केवल तकनीकी सुविधा उपलब्ध होने के आधार पर सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करना उचित नहीं होगा।

आपदा-प्रबंधन की तैयारी में भी मठ-समुदाय का अनुभव अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सुरक्षित निकास-मार्ग एवं आवश्यक वस्तुओं की सूची जैसे उपाय स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तैयार किए जा सकते हैं। किसी प्राचीन प्रतिमा को स्थानांतरित करने अथवा भवन में परिवर्तन करने का निर्णय विशेषज्ञ आकलन तथा उत्तरदायी संरक्षकों के परामर्श से ही लिया जाना चाहिए। संरक्षण को आकस्मिक मरम्मत से आगे बढ़ाकर एक नियमित देखभाल-प्रक्रिया के रूप में स्थापित करने से धार्मिक उपयोग एवं सांस्कृतिक अध्ययन, दोनों को सम्बल मिल सकता है।

समुदाय की भागीदारी एवं निष्कर्ष

लाहौल-स्पीति के मठ-पर्यटन के लिए एक समान प्रवेश-सीमा निर्धारित कर देना पर्याप्त नहीं होगा। प्रत्येक परिसर के आकार एवं धार्मिक उपयोग के अनुरूप पृथक व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। पेडर्सन आगंतुक-संख्या की अकेली सीमा से आगे बढ़कर स्वीकार्य परिवर्तन एवं उसके संकेतकों की सतत निगरानी पर बल देते हैं। इस दृष्टि से किसी मठ की सफलता का आकलन पूजा में व्यवधान एवं स्थानीय सेवाओं की स्थिति को ध्यान में रखकर भी किया जाना चाहिए।

मठ-प्रबंधन एवं ग्राम-समुदाय के परस्पर परामर्श से आगंतुकों के लिए एक संक्षिप्त परिचय-पत्र तैयार किया जा सकता है, जिसमें प्रवेश के उपयुक्त समय एवं छायाचित्रण की अनुमति का स्पष्ट उल्लेख हो। ऐतिहासिक जानकारी के साथ-साथ यह बताना भी आवश्यक है कि भवन का वर्तमान उपयोग किस प्रयोजन के लिए होता है। स्थानीय भाषा तथा हिंदी में सामग्री तैयार करने से निवासियों एवं घरेलू पर्यटकों, दोनों को लाभ होगा; अन्य भाषाओं की आवश्यकता का निर्णय आगंतुक-समूहों की वास्तविक संरचना के अनुसार लिया जा सकता है। पर्यटन से प्राप्त संसाधनों के उपयोग में पारदर्शिता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि किसी सेवा अथवा प्रवेश से शुल्क प्राप्त होता हो, तो संरक्षण एवं स्थानीय सुविधाओं में उसके उपयोग का संक्षिप्त सार्वजनिक विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है। सहभागिता में अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली समूहों की आवाज़ सुनना भी आवश्यक है। पेडर्सन ने औपचारिक बैठकों में कुछ समूहों के दब जाने तथा सामाजिक पदानुक्रम से सहभागिता बाधित होने की समस्या को रेखांकित किया है। अतः स्थानीय प्रतिनिधित्व को केवल प्रभावशाली व्यक्तियों की उपस्थिति से पूर्ण नहीं माना जाना चाहिए।



इस अध्ययन से मठों एवं पर्यटन के संबंध का एक स्पष्ट निष्कर्ष उभरता है। ताबो की कलात्मक विरासत एवं की की शैक्षिक भूमिका से लेकर कुंगरी की धार्मिक परंपरा तथा लाहौल के छोटे केंद्रों तक, प्रत्येक स्थल की अपनी विशिष्ट आवश्यकताएँ हैं। धनकर की स्थिति संरक्षण की संवेदनशीलता को उजागर करती है, जबकि त्रिलोकीनाथ साझा श्रद्धा के भीतर भिन्न धार्मिक अर्थों को पहचानने की आवश्यकता को सामने लाता है। इन विशिष्टताओं को एक सामान्य दर्शनीय-स्थल सूची में समेट देना पर्याप्त नहीं है।

आगामी अनुसंधान में स्थानीय परिवारों तथा मठ-समुदायों के साक्षात्कार, एवं पर्यटन-आय तथा आगंतुक-व्यवहार का व्यवस्थित अध्ययन आवश्यक होगा। प्रस्तुत लेख ऐसी प्रत्यक्ष क्षेत्रीय जानकारी का विकल्प प्रस्तुत नहीं करता; इसका योगदान उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अध्ययन एवं प्रबंधन की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करना है। धार्मिक जीवन की निरंतरता एवं स्थानीय लोगों की सम्मानपूर्ण भागीदारी सुरक्षित रहने पर ही पर्यटन सांस्कृतिक समझ बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। यही लाहौल-स्पीति के मठों के लिए सतत पर्यटन की सर्वाधिक आवश्यक शर्त है।

संदर्भ सूची

- [1] लॉरॉ, यानिक एवं डेविड प्रिट्ज़कर. इंटीडक्शन. रेव्यू देत्यूद तिबेतेन, अंक 41 (2017): ii–iv.
- [2] आउअर, कार्मेन एलिज़ाबेथ. मेज़र फ़ॉर मेज़र: रिसर्चिंग ऐंड डॉक्युमेंटिंग अर्ली बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर इन स्पीति. रेव्यू देत्यूद तिबेतेन, अंक 41 (2017): 181–193.
- [3] जिला प्रशासन, लाहौल और स्पीति. मॉनैस्ट्रीज़ इन स्पीति. हिमाचल प्रदेश सरकार. <https://hplahaulspiti.nic.in/monasteries-in-spiti/>
- [4] जिला प्रशासन, लाहौल और स्पीति. त्रिलोकीनाथ टेंपल. हिमाचल प्रदेश सरकार. <https://hplahaulspiti.nic.in/trilokinath-temple/>
- [5] रिन्शेडे, गिसबर्ट. फ़ॉर्म्स ऑफ़ रिलिजस टूरिज़्म. एनल्स ऑफ़ टूरिज़्म रिसर्च, खंड 19. पर्गामन प्रेस (1992): 51–52.
- [6] हेनरी, नामग्याल. द ओरिजिन्स ऑफ़ द पद्म लिंग पा ट्रेडिशन इन द क्लाउड वैली ऑफ़ स्पीति. रेव्यू देत्यूद तिबेतेन, अंक 41 (2017): 273–276.
- [7] बोना, मेलोदी. कुंगरी त्सुगलाखांग म्यूरल्स कंज़र्वेशन-रेस्टोरेशन प्रोजेक्ट. रेव्यू देत्यूद तिबेतेन, अंक 41 (2017): 250, 254.
- [8] पेडर्सन, आर्थर. मैनेजिंग टूरिज़्म ऐट वर्ल्ड हेरिटेज साइट्स: अ प्रैक्टिकल मैनुअल फ़ॉर वर्ल्ड हेरिटेज साइट मैनेजर्स. यूनेस्को, पेरिस (2002).